International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 10 October- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

श्रीमतं शंकरदेव के साहित्य में समाज दर्शन

डॉ जोनटि दुवरा,
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गोलाघाट कॉमर्स कॉलेज, ज्योति नगर

E.mail: junti555@rediffmail.com

शोध सार:

श्रीमंत शंकरदेव उत्तर मध्यकालीन, भक्ति आन्दोलन की अन्यतम विभूति है। उनके साहित्य की पृष्ठभूमि मध्यकालीन, भक्ति आन्दोलन का वह पृष्ठ है जिसमें एक तरफ विस्तृत मानवता , और दूसरी तरफ अनेक संकीर्णताओं के प्रचार-प्रसार के दर्शन या ज्ञान प्राप्त होते हैं। श्रीमंत शंकरदेव के साहित्य में समाजदर्शन का आशय है - शंकरदेव का देखा हुआ समाज और शंकरदेवकालीन समाज का मूलाधार या - उस काल की भूमि व्यवस्था।

मध्ययुगीत भारतीय संत तथा समाज संस्कारकों में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव को अगर सबसे अग्रणी कहा जाये तो निश्चित रूप से यह आत्युक्ति या अतिश्योक्ति नहीं होगी। सम्पूर्ण असमीया को नवीनता के साथ संगठित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। धर्म, साहित्य, और संस्कृति में नवचेतना का स्वर लाने में अपरिसीम योगदान दिया था श्रीमंत शंकरदेवने ।

धर्म प्रतिष्ठापक, समाज-संस्कारक, नाट्यकार, कवि, चित्रकार, गीतकार, अभिनेता, मंच व्यस्थापक के रूप में बहु व्यक्तित्व के धनी थे श्रीमंत शंकरदेव ।

श्री मंत शंकरदेव उत्तर मध्यकालीन, भक्ति आन्दोलन की अन्यतम विभूति है। श्री मंत शंकरदेव के साहित्य की पृष्ठभूमि मध्यकालीन, भक्ति आन्दोलन का वह पृष्ठ है। जिसमें एक तरफ विस्तृत मानवता, और दूसरी तरफ अनेक संकीर्णताओं के प्रयास-प्रसार के दर्शन या ज्ञान प्राप्त होते है।

उत्तर मध्य कालीन भक्ति आन्दोलन की महत्वपूर्ण विशेषता है समन्वय और संगठन की भावना। इसका मुख्य केन्द्र बनता मध्यदेश। पूर्वीक्षेत्र में कामरूप और गौड़ दो मुख्य केन्द्र थे। इस

समय देश के पुर्वी क्षेत्र को छोड़कर देश के बाकी क्षेत्रों में - शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, तंत्र, मुख्य उपासना, सुफी इत्यादि - उपासक या उपासना पद्धति या फिर धर्मवालों का ही प्राधान्य था। इस्लाम के दुर्दान्त आक्रमण भी देश में इसी समय होते है। जिससे भारत के तत्कालीन सामाजिक परिवेश में विघटन होने लगते है। इसके फलश्रुत भक्ति आन्दोलन के समन्वय और संगठन की भावना ने देश की संज्ञान जनता को इस इस्लामी अशान्ति के समक्ष खड़े किए।

भक्ति आन्दोलन धर्म तथा आधात्म्य की नयी व्याख्या तथा समाज की एक निष्ठता को संयोजित करता है। वह सामाजिक एकात्मकता का जड़ बनता है। भक्ति आन्दोलन भारतीय जागरण या सजग शक्ति का परिणाम और जगतगुरु शंकरदेव इसी आन्दोलन की एक इकाई स्वरूप है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवहार के संयोजन, संरक्षण और भावात्मक एकता ही भक्ति काव्य का अर्न्तनिहित तत्व है, मूल चिन्ता है। इस समय में प्रवर्तित शंकराचार्या (788-820ई.) के ज्ञानात्मक ब्रह्मवाद, रामानुजाचार्य के (1017-1137 ई.) विशिष्टयपूतावाद, निम्बाकाचार्य के (1114-1162 ई.) के द्वैतवाद, श्रीशंकरदेव (1449-1568 ई.) के एकशरण वा बैष्णववाद, बल्लभाचार्य है (1473-1534 ई.) शुध्यादैतवाद चैतन्य महाप्रभु (1485-1534 ई.) है गौड़ीय बैष्णववाद, हरिदास के इच्छा द्वैतवाद और हित हरिवंश के (1502-1562 ई.) के बैष्णव रहस्यवाद से भक्ति काव्य महिमा मण्डित हुए।

श्रीमंत शंकरदेव के साहित्य में समाजदर्शन का आशय है - शंकरदेव का देखा हुआ समाज। अर्थात शंकरदेव का वह युग कैसा था, उन्होंने तत्कालीन समाज को किस रूप में देख, उससे पहले समाज कैसा था और उनके समय तक समाज में क्या परिवर्तन हुआ, समाज को देखने परखने की उनकी कैसी दृष्टि थी, समाज के लिए अपनी रचनाओं में उन्होंने किस आदर्श की प्रतिष्ठा की थी? उनका आदर्श कितना युगपरक और कितना कल्पनाश्रित था? समाज का वे कैसा बनाने चाहते थे? ऐसे ही अनेक सवालो और सम्भावनाओं पर ही प्रस्तुत लेख में विचार किया जायेगा।

गुरु शंकरदेव के साहित्य पर अगर हम विचार करें तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृतार्थ में वे एक व्यक्ति नहीं थे। एक संख्या थे। वे संस्कृत के विद्वान होने के साथ ही बहुमुखी प्रतिभाओं के भी धनी थे।

समाज की प्रथम इकाई है व्यक्ति और यही व्यक्ति क्रमशः परिवार, गोत्र, जाति, ग्राम, जनसमूह और समुदाय में विकसित होकर बाद में समाज रूप में ग्रहण करता है। शंकरदेव का समाज मध्ययुगीन समाज था। उस समय का समाज कई उपभागों जैसे- परिवार, ग्राम, जन, समूह, वर्ग, समूदाय, सम्प्रदाय, राज्य आदि । शंकरदेव का समाज दर्शन विभिन्न मानव समूहों की कुटिल सम्बंधों के बीच बहुत दूर तक प्रेरित और प्रभावित हुआ।

शंकरदेव कालीन समाज का मूलाधार था उस काल की भूमि व्यवस्था। राजाओं सामान्तों और कृषकों की आर्थिक का आधार भी था वही। उनकी राजनैतिक शक्ति भी उसी पर निर्भर थी मूलतः इन सभी की उन्नति अथवा अधोगति का मूलाधार भी यही भूमि व्यवस्था ही थी। शंकरदेव कालीन समाज में कुछ नयी बातें जैसे भक्ति का जन जीवन में प्रवेश, लोकभाषाओं में अधिक साहित्य सृजन, भाओना का प्रचलन, भिन्न वाद्य यं और कलात्मक वस्त्रों का निर्माण, इस्लाम को चूनौति राजाओं के द्वारा विधान कलाकारो को समादर करना, संगीत, राग, ताल आदि का विकास आदि देखने को मिलती है। उनकी समाज की एक अलग विशेषता यह भी है कि - देवता अथवा ईश्वर का शुरवीर और चरित नायक के रुप में स्वीकृत होना। शंकरदेव के समाज में तन्त्र-मंत्र परक साधनाओं का प्राधान्य था। समूहजनों की चिंता है बदले वे व्यक्तिवादी चिंता के पोषक थे। समाज में अंध विश्वास था। ऐसे समय गुरु शंकरदेव के प्रवचन या भक्ति मार्ग के प्रभाव से समाज में नयापन आया। ईश्वर तथा इनकी शक्तिपर लोगों की आस्था बनी।

मूलतः गुरु शंकरदेव ने अपनी रचनाओं में तदयुगीन समाज के राजनैतिक आदर्शों का पुनः अंकण और आदर्शीकरण 'किया। वैष्णव शंकरदेव में कर्मकाण्डों ब्राह्मणों, अबैष्णवो और गुजाओं के अंकण में उदारता नही दिखती। उन्होंने अपने साहित्य के पालों से इसके चित्र प्रस्तुत किया है। फलतः वे यथार्थ होने की तुलना में चेतना से ओतप्रोत और अन्यापदेयी हो गया है।

शंकरदेव कालीन समाज चित्र :

(क) सामान्य जन जीवन : शंकरदेव के अनुसार उनका समाज कलयुगी समाज था जहाँ लोग एकत्त नहीं थे। सब आपस में अलग थे, सबका आचार बिचार भिन्न था। आवश्यकता भी सभी को एक सूल में बांधने की। सामाजिक जीवन में शक्ति सम्पन्न निर्बलों को सब प्रकार से दर्मित कर रहे थे।

(ख) वर्ण: श्रीमंत शंकरदेव की रचनाओं में चारो वणों के सम्बंध में जो बातें मिलती हैं, उनमें से कुछ पुराण आश्रित और कुछ युगीण परिवेश का प्रतिबिम्ब स्वरूप है।

शंकरदेव के भक्ति से विमुख ब्राह्मणों की अपेक्षा विष्णु भक्त बाह्मणों को अधिक महत्व दिया है। उस समय में शुद्र की स्थिति बड़ी दयनीय थी। यथा –

"किराट कछारी खासी गारों मिरि, यवन कंक गोवाल

असम मलुक धुबा से तुरुक, कुवाच म्लैच्छ चंण्डाल।" (भागवत 2/1270)

श्री मंत शंकरदेव के भारतीय नारियों का मर्यदापूर्ण गौरवशाली वर्णन किया है-

"स्वभावते तिरी जाति नुहि स्वंतरी।" (रुक्मिणी हरण)

(ग) नैतिकता : श्री शंकरदेव के समय में समाज में नैतिक अध: पतन हुआ था। चहूदिशाओं में अनाचार, चौरी, विकृत कामवासना, मद्यपान आदि का व्यापक प्रचलन था।

नैतिक अध: पतन का सबसे प्रधान कारण शंकरदेव ने वामाचार को ही माना है।

(घ) अर्थ के प्रति लोभ : शंकरदेव कालीन समाज आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो गया था। सामान्य जन की दीनताओं का चित्रण गुरु शंकरदेव ने इस प्रकार किया है -

'घोर कलि युगे जिटोजन धनवन्त।

सेहिसे कुलीन सदाचारी गुणवन्त।।" (भागवत)

(ङ) नित्य उपकरण: विभिन्न प्रसंगों में भिन्न प्रकार की भोजन सामग्री सहित दैनिक आवश्यकीय वस्तुओं में फुल, चन्दन, तामबुल, कस्तुरी अगरू आदि का उल्लेख शंकरदेव ने किया है। निवास स्थानों का भी अति सुन्दर वर्णन किया है। यथा - "रत्नमय गृह सब करे जातिस्कार

नाहि खेट बेत बास काष्ठर संचार।" (रुक्मिणी हरण) इसके अलावा गुरु शंकरदेव ने अपने साहित्यिक कृतियों के माध्यम से तत्कालिन प्रचलित रीति रिवाज, आचार-व्यवहार, अभिवादन,

शिष्टाचार, भोजन संस्कार जैसे गर्भधान, जात - कर्म, नामकरण, चुड़ाकर्म, उपनयन, विवाह, अधिवास, मुखचन्द्रिका केश बंधन आदि के सुन्दर तथा यथावत वर्णन किया है।

श्री मंत शंकर देव के साहित्य में पर्वो या त्योहारो के सुन्दर प्रयोग देखे जाते है। यथा -

"रंगो फागु खेले चैतन्य बनमाली

युहाते फल्गुर गुडै, सिंचत मुरारी।" (कीर्तन)

इसी के साथ-साथ प्रचलित लोक विश्वास, प्रचलित मनोरंजन का भी उल्लेख यथावत हुआ है। नारी वर्णन में उनके सौन्र्दय प्रसाधन का भी सुन्दर अंकन किया गया है। यथा -

"मालती फुलर भितरत दिला थोपा।

शिरत सिंदुर आगरर दिला फोट।।" (रुक्मिणी हरण)

गुरु शंकरदेव के साहित्य में परिवारों, समाजों, तथा सामा जिक विचारों के भी सुन्दर चित्र मिलते है। यथा

(क) "शत्रु मिल उदासीन सवाते समाज।" - (भागवत)

(ख) "कुकुर श्रृंगाल गर्दभरों आत्माराम - (कीर्तन)

आर्थिक समृद्धि भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक है। परन्तु श्रीमंत शंकरदेव का जीवन संसार से समृद्ध होकर भी भैतिकबादी नहीं था। इसलिए उनकी रचनाओं में अर्थ सम्बंधी प्राप्त मान्यताएँ बैष्णवी और साधु सन्यासीयों की दृष्टि को ही ज्यादा उपस्थित करती है। इसकी पूष्टि शंकरदेव के अनेक उच्छारणों से की जा सकती है। यथा -

"पाँच भाग करि विभानिबे निज वित्त।

धर्म अर्थ काम मोक्ष पूत्तर निदाने। (भागवत)

इसके साथ ही गुरु शंकरदेव के साहित्य में बाह्याचार का त्याग, सत्य और अहिंसा, जीवन में पति-पत्नी का पारस्परिक सम्र्पक, साम्यभाव आदि के भी सुन्दर चित्र प्रतीय मान होते है।

निष्कर्ष :

ऊपर वर्णिति शंकरदेव के समाज दर्शन सम्बंधी विचारों से इस बात की स्पष्टी हो जाती है कि भले ही अनेक उपकरण अधूरे रह गए है तथादि शंकरदेव के साहित्यिक कृतियों में तत्कलीन लोकमानस या लोक समाज की एक छवि प्रतिच्छवित हुइ है। दुसरी ओर गुरु शंकरदेव द्वारा परिकल्पित समाज स्वयम में पूर्ण, धार्मिक तथा सम्पन्न समाज है। जहाँ जीवन की नैतिक सांस्कृकि धार्मिक दृष्टिर्वाण को सुव्यवस्थित करने के हरसम्भव प्रयास हुए है।

अशांति - अनाचार से युक्त विश्रृंखल समाज को एक जुट करना उनका लक्ष था। समाज को संगठित करने में उनके प्रयास अद्वितीय है। गुरु श्रीमंत शंकरदेव के समाज दर्शन की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने विविधता में एकता के ऐसे सूत्र को अपनाया जिसे समाज ने हृदय से ग्रहण किया। शंकरदेव की कविता को आत्मा मार्धुयता में न होकर दास्य में ही बसती है।

इस प्रकार हमने देख कि जगतगुरु श्रीमंत शंकरदेव का साहित्य भण्डार अत्यन्त विशाल और उनके गर्भ में छुपे सामाजिक तत्व या दर्शन उसमें भी विशाल और युगसम्पन्न है। जहाँ उन विशालता में' लोक कल्याण, समाज कल्याण की भावना छूपी है, व्याप्त है। जिसे किसी लेखन से प्रकट करना वास्तव में अति कठिन और चुनौटी पूर्ण है। गुरु शंकरदेव के साहित्य में व्याप्त तवों को समझना जितना कठिन है उससे भी कठिन है उन्हें व्याख्यायित करना ।

अंत में गुरु है वम्पन पद से ही इस लेख की यति उनके परम शिष्य माधवदेव के शब्दों से करना चाहुँगा इस प्रकार - जय गरु शंकर, सर्वगुणाकर, याकेरि नाहिके उपाम।

संदर्भ ग्रंथ

(क) 'जयगुरु शंकर' - हेम डेका।

(ख) "शंकरदेव और तुलसी दास की वैचारिक पृष्ठभूमि" - डा० भूपेन्द्र राय चौधुरी।

(ग) 'शंकरदेव साहित्यकार और विचारक' - डा० कृष्ण नारायण प्रसाद

(घ) 'श्रीमंत शंकरदेव और भारतीय जातीयता वाद" - दयाल कृष्ण बोरा।

(ङ) 'कामरूपा' मुखपत्र, कामरूप जिला साहित्य सभा संम्पादक - अनिल चन्द्र कलिता।

(च) 'गुणनिधि'- पत्रिका, सम्पादक - रमेश महन्त।

(छ) 'असम के बरगीत' - बापचन्द्र महन्त।